अध्याय 7

राजस्थान के गौरव

राजस्थान का इतिहास एवं संस्कृति गौरवपूर्ण रही है तथा यह वीरभूमि भी रही है जहां महापुरुषों ने अपने प्राणों की अपेक्षा अपनी स्वतंत्रता एवं सम्मान को अधिक महत्व दिया। यहां के महापुरुषों, जननायकों, लोकदेवता व समाज सुधारकों ने राजस्थान के लोगों को एक नया रास्ता दिखाया। राजस्थान के जननायकों में बापा रावल, पृथ्वीराज चौहान, वीर दुर्गादास, महाराणा सांगा, मालदेव, मीरांबाई, पन्नाधाय, अमृतादेवी, महाराजा सूरजमल, गोविन्द गुरु, काली बाई, लोकदेवताओं में गोगाजी, तेजाजी, रामदेव जी, पाबूजी, देवनारायण एवं समाज सुधारकों में सन्त पीपाजी दादू, जसनाथजी, जाम्भोजी, रामचरणजी, आचार्य भिक्षु, के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। ये सभी हमारे राजस्थान के गौरव है। हमें अपने इन पर गर्व करना चाहिए।

जननायक

1.बापा रावल –

मेवाड़ के गुहिल वंशी शासकों मे बापा (बप्पा) रावल का महत्वपूर्ण स्थान है। बापा के जन्म व माता–पिता के नामों के बारे में विद्वानों में मतैक्य नहीं है, लेकिन इसका बचपन मेवाड़ के एकलिंगजी के पास नागदा गांव में व्यतीत हुआ, इस पर सभी विद्वान एकमत है। यहां नागदा के जंगलों में गायें चराते हुए बापा का सम्पर्क हारीत राशि (ऋषि नहीं) से हुआ।

बापा रावल

हारीत राशि पाशुपत– लकुलीश मत में दीक्षित एक सन्यासी थे। बापा ने हारीत राशि की खूब सेवा की। यह समय प्रतिकूल परिस्थितियों का था। अरब खलीफाओं के खूनी संघर्ष व धर्म परिवर्तन सम्बन्धी अत्याचारों से हारीत राशि दुःखी थे। बापा के व्यक्तित्व, विचारों तथा प्रतिभा से हारीत राशि काफी प्रभावित थे। उन्होंने बापा में वे सभी गुण देखे जो तत्कालीन प्रतिकूल परिस्थितियों को अनुकूल परिस्थितियों में बदल सके। यही सोचकर बापा को हारीत राशि ने उसी तरह से शिक्षित व प्रशिक्षित किया जिस तरह चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को तैयार किया था तथा हारीत राशि ने अपने जीवन का अंतिम समय जानकर बापा को वरदान दिया कि तुम मेवाड़ के शासक बनोगे और तुम्हारे वंशजों के हाथ से मेवाड़ का राज्य कभी नहीं जायेगा। इस वरदान के साथ–साथ हारीत राशि ने बापा को आर्थिक सहयोग भी किया और यह भी कहा कि तुम्हारा सम्बोधन 'रावल' होगा।

हारीत राशि के अवसान के बाद बापा ने सेना का संगठन किया और चित्तौड़गढ़ पर आक्रमण कर उस पर कब्जा किया तथा अपने राज्य की सीमा का विस्तार भी किया। इस समय पश्चिम भारत को अरब आक्रमणों से लगातार संघर्ष करना पड़ रहा था। इस विषम परिस्थिति को अनुभव कर बापा रावल ने अरब सेना से टक्कर लेने का निश्चय किया तथा उसने प्रतिहार नागभट्ट प्रथम, सांभर व अजमेर नरेश अजयराज, हाड़ौती के धवल, माड़ (जैसलमेर) के शासक देवराज भाटी एवं सिन्ध के राजा दाहिर से मिलकर एक संयुक्त मोर्चा बनाया। बापा रावल के नेतृत्व में इस संयुक्त मोर्चे की सेना व अरब की खलीफा शक्ति से जबरदस्त टक्कर हुई। मुहम्मद बिन कासिम को भी पराजित किया। सिन्ध को मुक्त कराकर इस सेना ने ईरान, ईराक व खुरासान तक का प्रदेश जीत लिया। बापा रावल ने यहां कई विवाह किये। धर्मान्तरित हुए लोगों को पुनः हिन्दू बनाया। 'फतुहुल बलदान' नामक अरबी ग्रंथ का लेखक बताता है कि अब भारत में पुनः मूर्तिपूजा आरंभ हो गई। इस प्रकार बापा ने मेवाड़ की सीमा को ईरान, इराक व खुरासन तक बढ़ाया और प्रथमबार अरब खलीफाओं के आक्रमणों व धर्म परिवर्तन के प्रयासों पर अंकुश लगाया।

बापा रावल ने अपने राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था को भी सुदृढ़ किया तथा कई निर्माण कार्य भी कराये। सोने का सिक्का भी जारी किया। बापा रावल ने अपने जीवन के चतुर्थाश्रम में प्रवेश करने पर अपने पुत्र को राज्य सौंपकर हारीत राशि की परम्परा में सन्यास ग्रहण किया और सन्यासावस्था में ही उसका देहान्त हुआ। एकलिंगजी से कोई तीन किलोमीटर उत्तर दिशा में बापा रावल का अन्तिम संस्कार किया गया। इस अन्तिम संस्कार स्थल को आज भी बापा रावल के नाम से जाना जाता है, जहां पर बापा रावल का मन्दिरनुमा समाधि स्थल बना हुआ है। हारीत राशि की भविष्यवाणी के अनुसार बापा रावल के वंशज सन् 1947 में भारत आजाद होने तक मेवाड़ पर शासन करते रहे। इस प्रकार बापा के वंशजों का मेवाड़ पर तेरह सौ वर्षों तक अधिकार रहा जो भारत में सबसे प्राचीन जीवित राजवंश के नाम से जाना जाता है।

इतिहासकार ओझा ने बापा रावल को एक स्वतंत्र, प्रतापी और विशाल राज्य का स्वामी बताया है। डॉ.गोपीनाथ शर्मा ने बापा का स्थान मेवाड़ के इतिहास में अग्रणी स्वीकार किया है। वह धर्मनिष्ठ था। कर्नल टॉड ने बापा को कई वंशों का संस्थापक व शासक के रुप में मान्यता प्रदान कर मनुष्यों में पूजनीय और अपनी कीर्ति से चिरंजीवी माना है। ब्रिटिश विद्वान चार्ल्स मार्टन ने लिखा है कि उसके शौर्य के सामने अरब आक्रमण का ज्वारभाटा टकराकर चकनाचूर हो गया। कविराजा श्यामलदास ने लिखा है इसमे संदेह नहीं कि बापा हिन्दुस्तान का बड़ा पराक्रमी, प्रतापी व तेजस्वी महाराजाधिराज हुआ। उसने अपने पूर्वजों के प्रताप,बड़प्पन व पराक्रम को पुनः स्थापित किया।

2. पृथ्वीराज चौहान –

बारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में चौहान साम्राज्य उत्तरी भारत में अत्यधिक शक्तिशाली हो गया था। चौहान साम्राज्य का विस्तार कन्नौज से जहाजपुर (मेवाड़) की सीमा तक विस्तृत हो गया था। सोमेश्वर देव की मृत्यु के बाद पृथ्वीराज चौहान 11 वर्ष की अल्पायु में सिंहासन पर बैठा। माता कर्पूरीदेवी अपने अल्पवयस्क पुत्र के राज्य की संरक्षिका बनी। अपने मंत्री व सेनापति के सहयोग से पृथ्वीराज ने शासन चलाया। उसने अपने विश्वस्त सहयोगियों को उच्च पदों पर नियुक्त किया।

साम्राज्य विस्तार की दृष्टि से पृथ्वीराज चौहान ने पड़ौसी राज्यों के प्रति दिग्विजय नीति का अनुसरण किया। 1182 ई. में महोबा के चन्देल शासक को पराजित किया। इसके उपरांत पृथ्वीराज चौहान का चालुक्यों से एवं कन्नौज के गहड़वालों से संघर्ष हुआ।

पृथ्वीराज चौहान

सन् 1178 में गजनी के शासक मोहम्मद गौरी ने गुजरात पर आक्रमण किया। यहां के शासक भीमदेव चालुक्य ने खासहरड़ के मैदान में गौरी को बुरी तरह परास्त किया। गौरी ने सीमा प्रान्त के राज्य सियालकोट और लाहोर पर अधिकार किया। सन् 1186 से 1191 ई. तक मोहम्मद गौरी पृथ्वीराज चौहान से कई बार पराजित हुआ। हम्मीर महाकाव्य के अनुसार 07 बार, पृथ्वीराज प्रबन्ध में 08 बार, पृथ्वीराज रासो में 21 बार, प्रबन्ध चिन्तामणि में 23 बार मोहम्मद गौरी के पराजित होने का उल्लेख है। दोनों के मध्य दो प्रसिद्ध युद्ध हुए। तराइन के प्रथम युद्ध में 1191 ई. में राजपूतों के प्रहार से गौरी की सेना में तबाही मच गई तथा गौरी गोविन्दराय के भाले से घायल हो गया, उसके साथी उसे बचाकर ले गये। पृथ्वीराज चौहान ने गौरी की भागती हुई सेना का पीछा नहीं किया।

सन् 1192 में गौरी पुनः नये ढंग से तैयारी के साथ तराइन के मैदान में आ डटा। मोहम्मद गौरी ने सन्धिवार्ता का बहाना करके पृथ्वीराज चौहान को भुलावे में रखा। गौरी ने प्रातःकाल राजपूत जब अपने नित्यकार्य में व्यस्त थे, तब अचानक आक्रमण कर दिया। गोविन्दराय व अनेक वीर योद्धा युद्ध भूमि में काम आये। गौरी ने भागती हुई सेना का पीछा किया व उन्हें घेर लिया। दिल्ली व अजमेर पर तुर्कों का अधिपत्य हो गया। पृथ्वीराज रासो में उल्लेख है कि पृथ्वीराज

चौहान को गजनी ले जाया गया, उन्हें नेत्रहीन कर दिया गया। वहाँ पृथ्वीराज ने अपने शब्द भेदी बाणों से गौरी को मार दिया और उसके बाद स्वयं को समाप्त कर दिया, किंतु इतिहासकार इस बात पर एकमत नहीं हैं।

पृथ्वीराज चौहान वीर,साहसी एवं विलक्षण प्रतिभा का धनी था। पृथ्वीराज चौहान का विद्या एवं साहित्य के प्रति विशेष लगाव था। जयानक, विद्यापति, बागीश्वर, जनार्दन, चन्दबरदाई आदि उसके दरबार में थे।

पृथ्वीराज चौहान ने अपने साम्राज्य की सुरक्षा की दृष्टि से पड़ौसी राज्यों को अपनी शक्ति का परिचय कराया। कई आक्रमणकारियों को उसने बुरी तरह खदेड़ा, इसलिए इन राज्यों ने पृथ्वीराज चौहान की तरफ आंख उठाकर भी नहीं देखा। इतना सब होने पर भी पृथ्वीराज में दूरदर्शिता व कूटनीति का अभाव था। उसने पड़ौसी राज्यों से युद्ध करके शत्रुता उत्पन्न कर ली। गौरी को पराजित करने के बाद भी उसको पूरी तरह से समाप्त नहीं किया। डॉ. दशरथ शर्मा ने पृथ्वीराज चौहान को एक सुयोग्य शासक कहा है।

3. महाराणा सांगा 1509—1528 ई.

महाराणा कुम्भा के बाद महाराणा संग्रामसिंह जो कि सांगा के नाम से प्रसिद्ध है मेवाड़ में सर्वाधिक महत्वपूर्ण शासक हुआ। उसने अपनी शक्ति के बल पर मेवाड़ साम्राज्य का विस्तार किया एवं राजपूताना के सभी नरेशों को अपने अधीन संगठित किया। रायमल की मृत्यु के बाद सन् 1509 में राणा सांगा मेवाड़ का महाराणा बना। सांगा ने अन्य राजपूत सरदारों के साथ शक्ति को संगठित किया। पड़ौसी राज्य गुजरात के शासक महमूद बेगड़ा से भी संघर्ष किया। कुम्भाकालीन गौरव प्राप्त करने की दृष्टि से मुस्लिम शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष करना जरुरी था। सांगा का गुजरात के बादशाह से 1520 ई. में संघर्ष हुआ, इसमें राणा सांगा विजयी हुआ। इसी प्रकार मालवा के सुल्तान महमूद खिलजी को भी राणा सांगा ने परास्त करके कैद कर लिया। बाद में अच्छा व्यवहार करने की शर्त पर उसे रिहा किया।

महाराणा सांगा ने अपनी शक्ति को संगठित कर दिल्ली सल्तनत के अधीनस्थ मेवाड़ के निकटवर्ती भागों को अपने राज्य में मिलाना आरम्भ कर दिया। सन् 1517 में दिल्ली के सुल्तान इब्राहीम लोदी व सांगा में खतौली का युद्ध हुआ जिसमें सुल्तान बुरी तरह परास्त हुआ। पराजय के बाद सुल्तान को सांगा ने बाड़ी (धौलपुर) के युद्ध में और पराजित किया। स्थानीय साहित्य में उल्लेख मिलता है कि राणा ने कई बार दिल्ली, माण्डू और गुजरात के सुल्तानों को पराजित किया।

महाराणा सांगा

पानीपत के प्रथम युद्ध में इब्राहीम लोदी को परास्त कर दिल्ली सल्तनत पर बाबर ने अधिकार कर लिया। उसके लिए असली चुनौती राणा सांगा की ही थी क्योंकि राणा सांगा ही उस समय ऐसा व्यक्ति था जो दिल्ली पर शासन स्थापित करने की क्षमता रखता था।

उस समय शक्ति का केन्द्र मेवाड़ बन गया था। सभी पड़ौसी राज्य सांगा की शक्ति को मान्यता देने लगे थे। कर्नल टॉड के अनुसार 7 उच्च श्रेणी के राजा, 9 राव व 104 सरदार सदैव उसकी सेवा में उपस्थित रहते थे।

बाबर एवं राणा सांगा के मध्य सत्ता की स्थापना को लेकर संघर्ष निश्चित था। बाबर ने प्रारम्भ में धौलपुर व कालवी पर अधिकार कर लिया। बयाना पर सांगा का अधिकार था। सांगा ने बयाना के युद्ध में मुगलों को बुरी तरह परास्त किया। मुगल सैनिकों ने सांगा के शौर्य के किस्से बाबर व अन्य सैनिकों को बताये। इससे बाबर की सेना का मनोबल टूटा। सन् 1527 में बाबर व राणा सांगा के मध्य खानवा का युद्ध हुआ। राणा के प्रहार से मुगल सेना प्रारम्भ में विचलित होने लगी। बाबर ने राजपूतों के पार्श्व भाग पर आक्रमण कर दिया। इसी बीच तीर लगने से राणा घायल हो गया। राणा को बेहोश अवस्था में युद्ध के मैदान से हटा दिया। होश आने पर राणा ने पुनः बाबर से लड़ने की इच्छा प्रकट की लेकिन सामन्तों ने खानवा में हुए

विनाश की बात कहकर ऐसा नहीं करने की सलाह दी। राणा सांगा ने प्रतिज्ञा की जब तक वह बाबर को नहीं हरा देगा, चित्तौड़ नहीं पहुँचेगा। राणा सांगा ने जनवरी, 1528 में बाबर के विरुद्ध चंदेरी के मेदिनीराय की सहायता के लिए प्रस्थान किया लेकिन कालपी से थोड़ा दूर स्वास्थ्य खराब होने के कारण 30 जनवरी,1528 को देहान्त हो गया।

महाराणा सांगा अंतिम राजपूत सम्राट था जिसने अपने नेतृत्व में सभी राजपूत शासकों को विदेशी आक्रमणों से सुरक्षा करने और उनसे वीरतापूर्वक मुकाबला करने के लिए संगठित किया। महाराणा के नेतृत्व में 108 राजा–महाराजा लड़ते थे। उन्होंने सदेव निरन्तर युद्ध ,शौर्य एवं पराक्रम से देश की रक्षा की। इसी भावना से प्रेरित होकर जनता ने भी महाराणा का पूरा साथ दिया। महाराणा ने भी इसी प्रेरणा से दिल्ली, माण्डू और गुजरात के शासकों को हराया ही नहीं बल्कि उन्हें बंदी बनाकर छोड़ दिया। राजपूताने के सभी राजा व बाहरी राजा भी महाराणा सांगा की अधीनता व मेवाड़ के गौरव के कारण उसके झण्डे के नीचे लड़ने में अपना गौरव समझते थे। महाराणा के शरीर पर 80 घाव तथा युद्ध में एक हाथ व एक पैर क्षतिग्रस्त होते हुए भी उनका शरीर वज्र की तरह मजबूत था। उन्होंने हिम्मत, मर्दानगी और वीरता को अपना कर अपने आपको अमर बना दिया। हरबिलास शारदा लिखते हैं कि – 'मेवाड़ के महाराणाओं में सांगा सर्वाधिक प्रतापी शासक हुए। उन्होंने अपने पुरुषार्थ के द्वारा मेवाड़ को उन्नति के शिखर पर पहुँचाया'। इतना होने पर भी अन्ततः महाराणा सांगा विदेशी शत्रु की कुटिल चाल और युद्ध कौशल को नहीं समझ पाये और युद्ध की नवीन तकनीकी को नहीं अपना सके। इसका शत्रु ने लाभ उठाया।

4. मीरांबाई

भक्त शिरोमणि मीरांबाई का जन्म 1498 ई. में मेड़ता के राठौड़ वंश के राव दूदा के पुत्र रतनसिंह के यहां ग्राम कुड़की में हुआ था। ऐसी मान्यता है कि मीरांबाई का मन बचपन से ही कृष्ण की भक्ति में रम गया था। मीरांबाई का कहना था – ' मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई'।

सन् 1519 में मीरांबाई का विवाह मेवाड़ के महाराणा सांगा के पुत्र भोजराज के साथ हुआ। लेकिन उसका मन कृष्ण भक्ति में ही रहा। सात वर्ष बाद ही भोजराज की मृत्यु हो गई। अपने पिता रतनसिंह और महाराणा सांगा की मृत्यु के बाद मीरांबाई को इस संसार से विरक्ति हो गई। अपना सम्पूर्ण ध्यान कृष्ण भक्ति में ही केन्द्रित कर लिया।

मीरांबाई

मेवाड़ के नये शासक विक्रमादित्य ने मीरांबाई को अनेक प्रकार से कष्ट दिये किन्तु मीरां ने अपनी आस्था को नहीं छोड़ा। मीरां पहले अपने पिता के घर मेड़ता चली गई और उसके बाद वृन्दावन चली गई। मीरां ने अपना अंतिम समय द्वारिका में व्यतीत किया।

मीरां की भक्ति का मूल आधार भाव और श्रृद्धा थी। मीरां ने अनेक संतों के साथ सत्संग एवं विचार–विमर्श किया लेकिन किसी एक धारा का अनुगमन नहीं किया। मीरां सगुण उपासक थी और वह इस पद्वति की श्रेष्ठ प्रतिनिधि भी थी। उनकी भक्ति यात्रा की शुरुआत कृष्ण के दर्शन करने की इच्छा से होती है। वह कहती है – 'मैं विरहणि बैठी जागूं दूखन लागैं नैण' कृष्ण भक्ति की प्राप्ति के बाद वह कह उठती है ' पायो जी मैंने रामरतन धन पायो'।

मीरां का समय सामन्तीकाल का चरमोत्कर्ष का समय था। ऐसे समय में रुढ़ियां, नारी स्वतंत्रता एंव जाति भेद के विरुद्ध मीरां ने बहुत साहस के साथ आवाज उठायी। मीरां ज्ञान पक्ष के स्थान पर सहज भक्ति को अधिक महत्व देती थी। वह लोकप्रिय भक्त थी।सामान्यजन मीरां से प्रभावित थे। आज भी उसके पदों को लोक भजनों के रुप में गाया जाता है।

5. पन्ना धाय–

राजस्थान में ही नहीं अपितु भारतीय संस्कृति में पन्ना

धाय का नाम मातृत्व, बलिदान, साहस एवं वात्सल्य का प्रतीक बन गया है। पन्ना धाय समर्पण एवं त्याग की प्रतिमूर्ति थी। महाराणा सांगा की मृत्यु के बाद मेवाड़ में अस्थिरता रही। सांगा के बाद रतनसिंह शासक बना लेकिन सन् 1531 में उसकी मृत्यु हो गई। उसके बाद विक्रमादित्य मेवाड़ का शासक बना लेकिन राजा व उसकी मां हाड़ी रानी कर्मवती के व्यवहार से मेवाड़ के सामन्त व जनता असंतुष्ट थी।

बनवीर द्वारा पन्ना के पुत्र की हत्या करते हुये

बहादुरशाह के आक्रमण के कारण भी मेवाड़ को अपार जनधन की हानि उठानी पड़ी। सांगा के भाई पृथ्वीराज के औरस पुत्र बनवीर ने सन् 1536 में विक्रमादित्य की हत्या करके मेवाड़ के सिंहासन पर अधिकार कर लिया। वह विक्रमादित्य के छोटे भाई बालक उदयसिंह की भी हत्या करके निश्चिन्त हो राज्य भोगना चाहता था।

पन्ना उदयसिंह की धात्री माँ थी और कर्मवती के जौहर के बाद उदयसिंह की सार–सम्भाल की जिम्मेदारी पन्ना धाय पर आ गई थी। उदयसिंह मेवाड़ का भावी उत्तराधिकारी था। अतः बनवीर इस उत्तराधिकारी को भी समाप्त करके अपने राज्य को सुरक्षित करना चाहता था लेकिन पन्ना धाय एक वीरांगना थी। अतः उसने स्वामीभक्ति के अनुकरणीय लगन से उदयसिंह की रक्षा की। उदयसिंह की आयु का ही पन्ना धाय का पुत्र चन्दन था। पन्ना धाय का आवास चित्तौड़ के किले में कुम्भा महल में था। पन्ना धाय को जब जनाना खाने से चीखें निकलती सुनाई दी तो वह समझ गई कि रक्त पिपासु बनवीर हत्या के उद्देश्य से उदयसिंह को तलाश रहा है। उसने तुरंत बालक उदयसिंह को एक टोकरी में सुलाकर उसे पत्तियों से ढंक कर अपने विश्वस्त नौकर को उसे सुरक्षित महलों से बाहर निकालने का दायित्व सौंपा। राजसी वस्त्र पहनकर अपने पुत्र चन्दन को उदयसिंह के पलंग पर सुला दिया। सत्ता लोलुप बनवीर के आते ही पन्ना धाय ने अपने पुत्र की तरफ हाथ से संकेत कर दिया। बनवीर ने तलवार से पन्ना धाय के बालक को उदयसिंह समझकर हत्या कर दी। नन्हें बालक के शव का पन्ना ने तुरंत अंतिम संस्कार कर दिया और स्वयं बालक उदयसिंह एवं स्वामीभक्त सेवक के पास पहुँचकर देवलिया के जागीदार रामसिंह के पास पहुँची। वहाँ उसे पूरा सम्मान मिला। वहाँ से उदयसिंह को वह सुरक्षित स्थान कुम्भलगढ़ ले गयी। किलेदार आशा देपुरा का भांजा बनकर उदयसिंह वहां बड़ा हुआ।

पन्ना धाय द्वारा किये गये इस बलिदान जैसे बलिदान का उदाहरण कहीं पर भी देखने को नहीं मिलता। पन्ना धाय के इस अविस्मरणीय बलिदान के कारण ही उसी दिन से पन्ना धाय को मेवाड़ की वीरांगना के रूप में सम्मान मिल रहा हैं।

6. वीर दुर्गादास राठौड़–

मारवाड़ के वीर दुर्गादास में देशभक्ति और स्वामीभक्ति कूट–कूट कर भरी हुई थी। ऐसे महान देशभक्त का जन्म 1638 ई. में महाराजा जसवन्तसिंह के मंत्री आसकरण के यहां हुआ था। आसकरण दुनेरा का जागीरदार था। पत्नी से नाराजगी के कारण आसकरण ने दुर्गादास व पत्नी को अकेला छोड़ दिया। दुर्गादास अपनी माँ के साथ लूणा के गाँव में रहने लगा। शिवाजी की माँ की तरह दुर्गादास की माँ ने भी उनमें मारवाड़ के प्रति देशभक्ति की भावना कूट–कूट कर भर दी तथा गाँव में ही खेती बाड़ी करने लगे।

वीर दुर्गादास राठौड़ ने अपनी प्रतिभा के बल पर स्वामी भक्ति की मिसाल कायम की। 1678 ई. में जमरुद में जोधपुर के महाराजा जसवन्त सिंह की मृत्यु हो गयी । उस समय उसके कोई पुत्र नहीं था, लेकिन उसकी पत्नी गर्भवती थी। औरंगजैब मारवाड़ के उत्तराधिकार के प्रश्न पर हस्तक्षेप

वीर दुर्गादास राठौड़

करके वहां पर इन्द्रसिंह को अपना कठपुतली शासक बनाना चाहता था। इसी बीच 19 फरवरी,1679 को महारानी के पुत्र अजीतसिंह का जन्म हुआ जिसकी सूचना बादशाह को भी पहुँच गई लेकिन इस सम्बन्ध में औरंगजेब की नीयत साफ नहीं थी। उसने जोधपुर पर अधिकार कर लिया। विभिन्न स्थानों पर खजानों की तलाशी ली और 36 लाख रुपये के बदले अपने चाटुकार इन्द्रसिंह को जोधपुर दे दिया। औरंगजेब ने मनसब के बहाने रानियों सहित राजपरिवार को दिल्ली बुला लिया। औरंगजेब कुंअर अजीतसिंह को बुलाकर अपना बनाना चाहता था।

राठौड़ सरदार औरंगजेब की इस कार्यवाही से प्रसन्न नहीं थे। उन्हें बादशाह की नीयत में खोट दिखाई दे रही थी । वे चाहते थे कि अजीतसिंह राजपरिवार सहित जोधपुर पहुँच जाये। अजीतसिंह को सुरक्षित मारवाड़ पहुँचाने में राठौड़ दुर्गादास, पंचोली केसरीसिंह, भाटी रघुनाथ, रणछोड़दास गोयन्ददासोत, राठौड़ सूरजमल आदि को जिम्मेदारी सौंपी। ये सरदार बादशाह का खुला विरोध नहीं कर सकते थे इसलिये उन्होंने कूटनीति से काम लिया। वीर दुर्गादास की योजनानुसार सरदारों ने संकल्प किया कि अपने प्राणों की आहुति देकर भी वे राठौड़ राजपरिवार की रक्षा करेंगे और उन्हें सकुशल मारवाड़ पहुँचायेंगे। कुछ सरदार बादशाह को धोखे में रखने के लिए अपनी जागीर को छोड़ गए, कुछ सरदार दिल्ली के आसपास के क्षेत्र में रहे ताकि अजीतसिंह को मारवाड़ के लिए निकाल कर ले जाने वाले दल की मुगल सेना से रक्षा कर सके तथा वे दल का पीछा करने वाली मुगल सेना से लड़कर मर मिटेंगे। इस सम्पूर्ण योजना और सूझबूझ के पीछे वीर दुर्गादास राठौड़ का ही हाथ था जिसने औरंजेब की धूर्तता को उचित उत्तर देने की यह तरकीब सोची।

वीर दुर्गादास अपने सहयोगी राठौड़ सरदारों के साथ रुपसिंह की हवेली से बड़ी चालाकी से अजीतसिंह को लेकर मारवाड़ की ओर निकल गये। स्त्रियों को भी पुरुष वेश में ले जाया गया। बादशाह को इसकी जानकारी मिली तो शाही दल ने उनका पीछा किया। राठौड़ रणछोड़दास ने इस दल से संघर्ष किया और अपने 70 सहयोगियों के साथ मारा गया। तब तक दुर्गादास काफी आगे निकल गये। शाही दल भी आगे बढ़ा। इस बार स्वयं दुर्गादास ने शाही दल को रोके रखा। तब तक राजपरिवार आगे बढ़ चुका था। संध्या समय होते–होते शत्रुओं से बचकर दुर्गादास अजीतसिंह से जा मिला। शाही सेना कम संख्या में रह गई और दिल्ली लौट गई। इस प्रकार दुर्गादास राठौड़ की सूझबूझ एवं राठौड़ सरदारों के बलिदान के बल पर अजीतसिंह सुरक्षित जोधपुर पहुँच गया।

मारवाड़– मुगल संघर्ष में भी दुर्गादास की महत्वपूर्ण भूमिका रही। वीर दुर्गादास ने अपनी कूटनीति के माध्यम से तथा मेवाड़ के सहयोग से औरंगजेब के पुत्र अकबर को बादशाह बनाने का प्रलोभन देकर अपनी ओर कर लिया। अकबर ने मारवाड़ के नाड़ौल नगर में स्वयं को बादशाह घोषित कर दिया। औरंगजेब ने अकबर के विद्रोह को दबा दिया लेकिन मुगलों के विरुद्ध राठौड़ों का संघर्ष जारी रहा। 1707 ई. में औरंगजेब की मृत्यु के बाद मारवाड़ पर राठौड़ों का पुनः अधिकार स्थापित हो गया। इस अधिकार को स्थापित करने में दुर्गादास की महत्वपूर्ण भूमिका रही।

दुर्गादास ने अकबर के पुत्र बुलन्द अख्तर और पुत्री सफमुतिन्निसा को अपने पास रखकर धर्मिक सहिष्णुता का परिचय दिया। उनके लिये मुस्लिम शिक्षा– दीक्षा की व्यवस्था की और ससम्मान उन्हें बादशाह के पास पहुँचाया। मारवाड़ में अजीतसिंह से भी ज्यादा सम्मान दुर्गादास का था। सरदारों की परिषद भी अजीतसिंह से अधिक दुर्गादास की सलाह का आदर करती थी। इससे अजीतसिंह दुर्गादास से ईर्ष्या करने लगा, वह अप्रसन्न रहने लगा। अजीतसिंह दुर्गादास की युद्ध नीति के अच्छे सुझावों का भी विरोध करने लगा। यदि अजीतसिंह दुर्गादास के सिद्धान्तों पर चलता तो मुगल मारवाड़ संघर्ष में मारवाड़ की गौरवपूर्ण स्थिति होती। अजीतसिंह के नाराज हो जाने पर दुर्गादास जोधपुर छोड़कर उदयपुर मेवाड़ में आ गया। यहां महाराणा ने दुर्गादास को सम्मान सहित रखा। उसे

विजयपुर की जागीर दी और पाँच सौ रूपये प्रतिदिन देने की व्यवस्था की। उसे रामपुरा का हाकीम भी बनाया। वहीं रहते हुए दुर्गादास की मृत्यु हो गई और उज्जैन में क्षिप्रा नदी के तट पर उनका दाह–संस्कार किया गया।

7. राव मालदेव

जिस प्रकार महाराणा सांगा एवं महाराणा प्रताप ने मेवाड़ की शक्ति और प्रतिष्ठा में वृद्धि की, उसी प्रकार मालदेव के नेतृत्व में जोधपुर मारवाड़ के राठौड़ों ने अपूर्व शक्ति अर्जित की। उसने साम्राज्य का विस्तार कर मारवाड़ की सीमा दिल्ली के निकट तक पहुँचा दी।

बाबर की मृत्यु के बाद दिल्ली की अस्थिरता का मालदेव ने लाभ उठाया। सांगा की मृत्यु के बाद मेवाड़ में भी कुछ समय अस्थिरता रही। इस समय राजपूत शासकों में मालदेव शक्तिशाली था।

मालदेव ने प्रारम्भ में भद्राजूण, रायपुर, नागौर, मेड़ता, अजमेर आदि पड़ौसी राज्यों पर अधिकार किया। बाद में चाटसू फतहपुर, टोडा, लालसोट पर भी अधिकार कर लिया। बंगाल में शेरशाह व हुमायूं के मध्य संघर्ष का मालदेव ने लाभ उठाया और उसने हिण्डौन तथा बयाना पर भी अधिकार कर अपनी सीमा का विस्तार किया। इसके अतिरिक्त मालदेव ने सिवाना, सांचोर, जालोर पर अधिकार कर लिया।

मालदेव ने हुमायूं के प्रति सहयोग की नीति अपनाई। जिस समय मालदेव अपने साम्राज्य विस्तार में व्यस्त था, हुमायूं अपनी बादशाहत बचाने के लिए शेरशाह से संघर्ष कर रहा था। कन्नौज के युद्ध में शेरशाह से पराजय के बाद हुमायूं को पलायन करना पड़ा था। आश्रय की खोज में उसे इधर–उधर भटकना पड़ा था। मालदेव ने इस समय कूटनीति से काम लिया। शेरशाह के भावी संकट को लेकर मालदेव आशंकित था। शेरशाह की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर युद्ध करने के लिए हुमायूं को 20,000 घुड़सवारों की सहायता का सन्देश भिजवाया और उसकी सहायता की।

शेरशाह व मालदेव दोनों के राज्य की सीमाएं मिल रही थीं। मारवाड़ के शासक मालदेव की शक्ति को नष्ट करने की दृष्टि से शेरशाह ने 1543 ई. में 80,000 सैनिकों की सेना मालदेव के विरुद्ध भेजी। मालदेव का शक्तिशाली राज्य शेरशाह के लिए एक चुनौती था। दोनों ने ही मोर्चाबन्दी की। शेरशाह ने अपना पड़ाव बावरा व मालदेव ने गिर्री नामक स्थान पर अपना पड़ाव डाला। एक माह तक पड़ाव ऐसे ही चलता रहा। कई बार तो शेरशाह परेशान होकर वापिस लौटने की सोचता रहा।

जब शान्ति से काम नहीं चला तो शेरशाह छल कपट की नीति पर आ गया। मालदेव व उसके सेनापतियों कूंपा व जेता में फूट डालने के प्रयास किए। उसने कूंपा के डेरे पर 20 हजार रूपये भिजवाये और कम्बल भेजने के लिए कहा। बाद में इन्हीं 20 हजार रुपयों को जेता के डेरे में भिजवा दिए और कहलवा दिया कि सिरोही से तलवारें मंगा लेना। इसकी सूचना उसने मालदेव के पास भी भिजवा दी। मालदेव शेरशाह के इस छल को समझ नहीं पाया। अपने सैनिकों पर अविश्वास कर लिया और बिना युद्ध किये ही 04 जनवरी,1544 रात्रि को जोधपुर लौट आया लेकिन जिन जैता, कूंपा पर अविश्वास किया था वे ही युद्ध मैदान में डटे रहे। शेष राठौड़ सरदारों के साथ 05 जून,1544 को सुमेल का प्रसिद्ध युद्ध हुआ। जैता और कूंपा अपने 1200 सैनिकों के साथ इतनी वीरता से लड़े कि अफगान सेना के पांव उखड़ने लगे। लेकिन इसी समय जलाल खां अतिरिक्त सेना लेकर आ गया और राजपूत सैनिकों को घेर लिया। जैता व कूंपा वीरगति को प्राप्त हुए। अब्बास खां ने अपने विवरण में लिखा है कि शेरशाह को जीतने की उम्मीद बहुत कम थी। बड़ी मुश्किल से इस युद्ध को जीत सका। उसे यह कहने के लिए मजबूर होना पड़ा कि – 'एक मुठठ्ी बाजरे के लिए मैं हिन्दुस्तान की बादशाहत खो देता।'

मालेदव को केवल मारवाड़ में ही नहीं अपितु भारतीय इतिहास में महत्त्वूपर्ण स्थान प्राप्त है। उसने अपने छोटे से राज्य को विशाल मारवाड़ साम्राज्य के रूप में परिणत किया। उसके राज्य में 58 परगने थे। उसने 52 युद्ध करके यह विशाल साम्राज्य स्थापित किया। अकबर भी मालदेव की मृत्यु के बाद ही जोधपुर पर अधिकार कर पाया। वीर होने के साथ–साथ मालदेव दानी प्रवृति का भी व्यक्ति था। ख्यात लेखकों ने उसे हिन्दू बादशाह की पद्वी दी। वह स्वयं संस्कृत भाषा का अच्छा

विद्वान था। इतना होते हुए भी मालदेव में दूरदर्शिता की कमी थी। शेरशाह के विरुद्ध उसने जेता व कूंपा पर अविश्वास करके अपनी जीत को पराजय में बदल दिया। बीकानेर और मेवाड़ को भी अकारण अपना विरोधी बना लिया।

8. अमृतादेवी–

वर्तमान में वृक्षारोपण एवं वृक्षों की सुरक्षा के लिए बड़ी बड़ी योजनाएं लागू की जा रही हैं। इन्हीं वृक्षों को बचाने के लिए आज से लगभग 300 वर्ष पहले मारवाड़ में खेजड़ली गाँव में एक घटना घटित हुई।

जोधपुर के महाराजा अभयसिंह को अपने नये महल के लिए लकड़ी की जरुरत थी। भाद्रपद शुक्ल दशमी वि.सं. 1787 के दिन महाराजा ने खेजड़ली गांव में खेजड़ी वृक्ष की लकड़ी काटने के लिए सैनिक टुकड़ी भेजी। इस गांव की ही एक महिला अमृतादेवी विश्नोई ने खेजड़ी वृक्ष के काटने का विरोध किया और पेड़ से लिपट गई। उसके साथ उसकी तीन पुत्रियां भी थी। अमृता देवी ने कहा वृक्ष की रक्षा के लिए वह अपनी जान भी देने को तैयार है। उसने यह कहते हुए सिर आगे कर दिया कि 'सर साटे रुख रहे तो भी सस्तो जाण' सिर के बदले वृक्ष बच जाता है तो भी सस्ता सौदा है। उसकी तीनों पुत्रियों की भी यही स्थिति हुई। महाराजा के सैनिकों ने विरोध करने पर अमृतादेवी व उसकी पुत्रियों के सिर धड़ से अलग कर दिया। उस दिन मंगलवार था जो कि काला मंगलवार के नाम से जाना जाता है। महाराजा के सैनिकों द्वारा वृक्ष काटने के विरोध में 363 अन्य विशनोई भी महाराजा के सैनिकों के हाथों इसी तरह से मारे गये। विश्नोई धर्म में वृक्ष काटना निषिद्ध है।

इस घटना से वातावरण उत्तेजित हो गया और वहाँ उपद्रव की स्थिति हो गई। गिरधरदास भण्डारी के नेतृत्व में वृक्ष काटने वाली पार्टी को भी इससे गहरा आघात लगा। वे अपना मिशन छोड़कर जोधपुर आ गये और महाराजा को पूरा घटनाक्रम बताया। महाराजा ने तुरंत वृक्ष की कटाई रोकने का आदेश दिया और इस क्षेत्र को वृक्ष व जानवरों के लिए संरक्षित क्षेत्र घोषित कर दिया।

खेजड़ी वृक्ष की रक्षा के लिए सामूहिक रुप से अपने प्राणों की बलि देना विश्व में यह अनूठी घटना है। खेजडली गाँव में अमृतादेवी व शहीदों की स्मृति में अब एक स्मारक बना हुआ है। विश्नोई जाति के लोग हिरणों की भी इसी तरह से रक्षा करते है।

खेजड़ी रक्षा हेतु अमृतादेवी एवं पुत्रियों का बलिदान

9. महाराजा सूरजमल

महाराजा बदनसिंह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र सूरजमल जाट 1756 ई.में. भरतपुर का शासक बना। राजनैतिक कुशलता एवं कुशाग्र बुद्धि के कारण उसे जाट जाति का प्लेटो भी कहा जाता है। आगरा,मेरठ,मथुरा अलीगढ़ आदि उसके राज्य में सम्मिलित थे। सूरजमल अन्य राज्यों की तुलना में हिन्दुस्तान का शक्तिशाली शासक था। उसकी सेना में 1500 घुड़सवार व 25000 पैदल सैनिक थे। उन्होंने अपने पीछे 10 करोड़ का सैनिक खजाना छोड़ा।

मराठा नेता होल्कर ने 1754 ई. में कुम्हेर पर आक्रमण कर दिया। महाराजा सूरजमल ने नजीबुदौला द्वारा अहमदशाह अब्दाली के सहयोग से भारत को मजहबी राष्ट्र बनाने की कोशिश को भी विफल कर दिया। उसने अफगान सरदार

असद खां, मीर बख्शी, सलावत खां आदि का दमन किया। अहमदशाह अब्दाली सन् 1757 में दिल्ली पहुँच गया और उसकी सेना ने ब्रज के तीर्थ को नष्ट करने के लिये आक्रमण किया। इसको बचाने के लिए केवल मात्र सूरजमल ही आगे आया और उसके सैनिकों ने अपनी कुर्बानी दी। अब्दाली पुनः लौट गया।

जब सदाशिव राव भाऊ अहमदशाह अब्दाली को पराजित करने के उददेश्य से बढ़ रहा था, तभी स्वयं पेशवा बालाजी बाजीराव ने भाऊ को परामर्श दिया कि उत्तर भारत में प्रमुख शक्ति के रुप में उभर रहे सूरजमल का सम्मान करते हुए उसके परामर्श पर ध्यान दिया जाए लेकिन भाऊ ने युद्ध सम्बन्धी इस परामर्श पर ध्यान नहीं दिया और अब्दाली के हाथों पराजित हुआ। इस युद्ध में मराठों को भारी क्षति उठानी पड़ी। युद्ध के बाद लगभग 50 हजार मराठा परिवार सूरजमल के राज्य में पहुँचे। अब्दाली ने सूरजमल को चेतावनी देते हुए, शरण में आये मराठों को सौंपने को कहा, लेकिन सूरजमल ने इस चुनौती को स्वीकार किया और मराठा सरदारों को सौपने से मना कर दिया। विद्वानों व तत्कालीन शासकों ने महाराजा के इस कार्य की प्रशंसा की। महाराजा सूरजमल के समय यह जाट राज्य अपने सर्वोच्च शिखर पर था। मुगल राज्य के मध्य में उसने भरतपुर का शक्तिशाली राज्य स्थापित किया। भरतपुर राज्य इतना अधिक शक्तिशाली हो गया था कि मुगल एवं अन्य राजनैतिक शक्तियां उसकी मदद मांगने को आतुर रहती थी।

10. गोविन्द गुरु

वागड़ क्षेत्र (डूंगरपुर, बांसवाड़ा) में गोविन्द गुरु ने भीलों के सामाजिक एव नैतिक उत्थान के लिए अथक प्रयास किए। वे महान समाज सुधारक थे। गोविन्द गुरु का जन्म 20 दिसम्बर, 1858 डूंगरपूर राज्य के बसियां गांव में हुआ था। 1880 में स्वामी दयानन्द सरस्वती जब उदयपुर आए, गोविन्द गुरु उनके विचारों से प्रभावित हुए और इन्होंने भील समाज में सुधार एवं जन जागृति का महत्वपूर्ण कार्य शुरू किया। मद्यपान एवं मांस का सेवन त्याग दिया। उन्होंने बनवासी बंधुओं के मध्य एक बड़ा स्वाधीनता आन्दोलन शुरु किया। यह आन्दोलन इतना प्रभावशाली था कि इससे अंग्रेज, राजे–महाराजे, जंगलों में फैले हुये विदेशी पादरी सब घबरा गए।

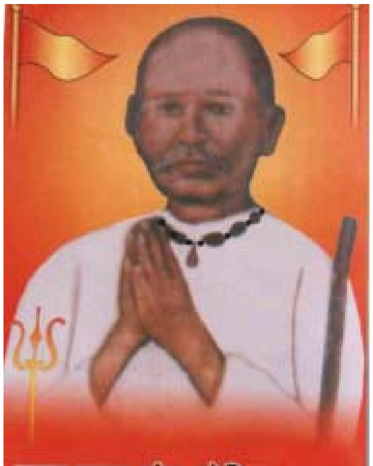
परम पूज्य संत गोविन्द गुरू

भीलों को सामाजिक दृष्टि से संगठित करने एवं मुख्य धारा में लाने के लिए सम्प सभा की स्थापना की । इसके साथ ही भीलों का हिन्दू धर्म के दायरे में रखने के लिए 'भगत पंथ' की स्थापना की। गोविन्द गुरु ने सम्प सभा के माध्यम से ईडर, डूंगरपूर, बांसवाड़ा व गुजरात में भीलों में सामाजिक जागृति का संचार किया। इससे प्रशासन सशंकित हो गया और भीलों को भगत पंथ छोड़ने के लिए दबाव बनाया जाने लगा।

तत्कालीन शासन ने जब भीलों का कृषि कार्य एवं बेगार करने के लिए विवश किया जाने लगा और जंगल में उनके मौलिक अधिकारों से वंचित किया गया तो वे आन्दोलन के लिए विवश हो गये। गोविन्द गुरु ने शिक्षा का प्रसार एवं समाज सुधार का संदेश दिया। अंग्रेजों को यह आशंका थी कि इन सुधारों व संगठन का मुख्य उदेश्य – भील राज्य की स्थापना करना है। अप्रैल, 1913 में डूंगरपूर राज्य द्वारा गोविन्द गुरु को पहले गिरफ्तार किया, फिर उन्हें रिहा कर दिया गया।

रिहा होने के बाद गोविन्द गुरु मानगढ़ पहाड़ी पर चले गए जो बासंवाड़ा राज्य की सीमा पर स्थित है। अक्टूबर,1913 में उसने भीलों को पहाड़ी पर पहुँचने का संदेश भिजवाया। भील भारी संख्या में हथियार लेकर एकत्र हो गये। बांसवाड़ा राज्य के सिपाहियों की पिटाई कर दी। पहाड़ी पर हमला कर दिया गया। मानगढ़ की पहाड़ी पर भीलों का प्रथम सम्मेलन हुआ। आश्विन शुक्ला पूर्णिमा को प्रतिवर्ष सम्प सभा का अधिवेशन होने लगा। इसी क्रम में 17 नवम्बर,1913 को सम्प सभा का सम्मेलन मानगढ़ की पहाड़ी पर हुआ। बड़ी संख्या में लोग उपस्थित हुए।

बांसवाड़ा ,ईडर व डूंगरपूर की सरकार चौकन्नी हो गई। ए.जी.जी. की स्वीकृति के साथ ही 06 से 10 नवम्बर के मध्य मेवाड़ भील कोर की दो कम्पनियां, बेलेजेली राइफल्स की एक कम्पनी तथा जाट रेजीमेंट पहाड़ी पर पहुँच गई। जाते ही गोलियां बरसाना शुरु कर दिया। सरकारी आंकड़ों के अनुसार इसमें 1500 भील मारे गये। भगत आन्दोलन को कुचल दिया गया। गोविन्द गुरु को 10 वर्ष का कारावास हुआ। यद्यपि इसमें भीलों की बहुत बड़ी राजनैतिक महत्वकांक्षा नहीं थी लेकिन अग्रेजों व शासकों ने इसे चुनौती माना। उन्हें बहाना मिल गया। निर्दोष लोगों को गोलियों से भून दिया गया। यह घटना राजस्थान का जलियांवाला बाग कांड के नाम से जानी जाती है। गोविन्द गुरु अहिंसात्मक आन्दोलन के पक्षधर थे। इस आन्दोलन से भीलों के साथ–साथ समाज के अन्य वर्गों में भी जागृति उत्पन्न हुई। इसके बाद भीलों ने शासकीय अत्याचार एवं अनावश्यक करों के विरुद्ध आवाज उठाना प्रारम्भ कर दिया। अंग्रेजों एवं रियासतों दोनों को इसका सामना करना पड़ा।

11. कालीबाई–

कालीबाई भील डूंगरपूर जिले में रास्तापाल की रहने वाली थी। 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन की घोषणा के बाद राजस्थान के निवासी भी औपनिवेशिक शासन के खुले विरोधी हो गए। भोगीलाल पाण्डया, शोभालाल गुप्त, माणिक्यलाल वर्मा के सहयोग से डूंगरपूर सेवक संघ की स्थापना की गई। यह संगठन दलितों एवं आदिवासियों के लिए स्कूल चलाता था। अंग्रेजों के दबाव में डूंगरपूर राज्य में इस प्रकार के विद्यालयों के संचालन की मनाही थी। प्रजामण्डल ने अन्यायपूर्ण तरीके से विद्यालयों को बन्द करने का विरोध किया और औपनिवेशिक शासन की समाप्ति की मांग की। प्रजामण्डल के कार्यकताओं पर डूंगरपुर नरेश द्वारा अत्याचार किया जाने लगा और उन्हें जेल भेज दिया ।

इसी प्रकार एक विद्यालय नानाभाई खांट के घर पर संचालित था। राज्य पुलिस 19 जून,1947 को रास्तापाल आई। नानाभाई खांट ने विद्यालय बन्द करने से मना कर दिया। पुलिस ने बर्बरतापूर्वक नानाभाई खांट की पिटाई कर दी और उन्हें जेल भेज दिया। पुलिस की चोटों से नानाभाई खाट की मृत्यु हो गई। इससे अंसतोष की भावना में और वृद्धि हुई। पुलिस ने विद्यालय के अध्यापक सेंगाभाई भील को इसलिए मारना आरम्भ कर दिया क्योंकि उसने नानाभाई की मृत्यु के बाद विद्यालय में अध्यापन जारी रखा। अध्यापक को पुलिस ने अपने ट्रक के पीछे बाँध दिया और इसी अवस्था में उसे घसीटते हुए रोड़ पर ले गए। विद्यालय की किशोर बालिका कालीबाई से यह देखा न गया। पुलिस के मना करने के बाद भी, वह ट्रक के पीछे –पीछे दौड़ी और उस ट्रक से रस्सी को काटकर अपने अध्यापक को पुलिस के आतंक से मुक्त कराया। इससे पुलिस अत्यधिक क्रोधित एवं उत्तेजित हो गई। जैसे ही कालीबाई अपने अध्यापक सेंगाभाई को उठाने के लिए झुकी, पुलिस ने कालीबाई के पीठ पर गोली दाग दी। कालीबाई गिरकर अचेत हो गई। बाद में डूंगरपूर के चिकित्सालय में उसकी मृत्यु हो गई।

पुलिस की इस बर्बरता एवं विद्यालय की एक किशोर बालिका की अन्यायपूर्ण तरीके से हत्या से भीलों में जबरदस्त असंतोष फैल गया। लगभग 12,000 लोग हथियारों सहित एकत्र हो गये। महारावल डूंगरपुर पर दबाव बनाया जाने लगा कि वह प्रजामण्डल के कार्यकताओं को जेल से रिहा करें, वे भीलों के समूह को शांत करें और उन्हें लौटाने के लिए राजी करें। अब रास्तापाल में 13 वर्षीय कालीबाई की प्रतिमा स्थापित है। उसकी शहादत की स्मृति में अब यहां पर प्रतिवर्ष शहादत के दिन मेला लगाया जाता है और लोग इस अमर शहीद बाला को श्रद्धासुमन अर्पित करते हैं।

लोकदेवता

धर्म, धरा व धेनु की रक्षार्थ जिन महापुरूषों ने कार्य किया, संघर्ष किया और बलिदान किया वे लोकदेवता की श्रेणी में आते हैं। आज भी जनता में उनके प्रति अटूट श्रद्धा है। इनके प्रसिद्ध मेले लगते हैं। भूतकाल में कुछ ऐसे व्यक्ति जनता के सामने आये जिन्होंने जनता व गोवंश की रक्षा, दलित जातियों का उद्धार एवं धर्म की रक्षार्थ महत्वपूर्ण भूमिका निभायी एवं अपने प्राणों का भी उत्सर्ग किया। इनमें गोगा जी, तेजाजी व पाबूजी का नाम आता है। इनके शौर्य एवं लोकहितकारी कार्यों को देखकर जनता ने इन्हें आराध्यदेव का पूज्यत्व प्रदान किया। इसी क्रम में कुछ ऐसे सिद्ध व्यक्ति भी हुए जिन्होंने

अपनी वीरता, सिद्धि व चमत्कार से जनसाधारण को प्रभावित किया, इनमें मल्लीनाथ जी, देवनारायण व हरभूजी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। ये सभी राजस्थान के लोकदेवताओं की श्रेणी में आते हैं।

तेजाजी गोगाजी पाबू जी

1. तेजाजी –

गो–रक्षक तेजाजी नागौर जिले के खरनालिये गाँव के रहने वाले थे। इनका जन्म माघ शुक्ला चतुर्दशी वि.सं.1130 में हुआ। बाल्यकाल में ही विवाह हो जाने के कारण इन्हें यह भी पता नहीं था कि मैं विवाहित हूँ। एक दिन जब ये खेत पर हल चला रहे थे, उस दिन इनकी भाभी खेत पर खाना लेकर देर से पहुँची। इस पर तेजाजी ने कहा इतनी देर कैसे हो गई तब भाभी बोली कि तुम्हारी पत्नी तो पीहर में बैठी मौज कर रही है और मैं यहाँ काम के मारे पिसती जा रही हूँ। तेजाजी को यह बुरा लगा। अपने ससुराल का पता पूछ कर बिना भोजन किये घोड़ी पर सवार होकर ससुराल चल पड़े। जब ससुराल पहुँचे तो इनकी सास गायों से दूध निकाल रही थी। तेजाजी के घोड़े के खुर की आवाज सुनकर दूध देती गाय बिदक गई। इस पर सासु बोली कि नाग रौ झाटियोड़ो यो कुण है? जणी गायां ने भिड़का दी। तेजाजी ने जब यह सुना तो उन्हें यह बहुत बुरा लगा। वे तत्काल वहां से लौट गये। जब ससुराल वालों को पता चला तो तेजाजी को रोकने की बहुत कोशिश की, पर वे नहीं माने। पत्नी ने बमुश्किल एक रात रूकने के लिये राजी किया। लेकिन तेजाजी ने कहा कि वे ससुराल में नहीं ठहरेंगे। अन्ततः वे लांछा नामक गुजरी के यहाँ रात को रूके। रात को कुछ चोर आये और लांछा गुजरी की गायों को घेर ले गये। तेजाजी को पता चला तो गाय चोरों के पीछे घोड़ी पर चढ़ कर भागे। रास्ते में लकड़ी के जलते ढेर में एक साँप को जलते हुए देखा, तेजाजी ने भाले की नोंक से उसे बाहर निकाला, तब साँप बोला मैं तुझे डसूँगा। तेजाजी ने कहा मैं अभी गायें छुड़ाकर आता हूँ, तब डसना। जब तेजाजी गायें छुड़ाकर आये तो चोरों से लड़ाई में उनका सारा शरीर खून से लथपथ था। साँप ने कहा, शरीर पर खून है मैं कहाँ डसू, तब तेजाजी ने अपने मुंह से जिव्हा निकाली और कहा, यहाँ डसो। साँप ने डसा और वे प्राणांत हो गए। उनकी पत्नी पीछे सती हो गई। तेजाजी की गायें छुड़ाने व वचन पालन की ख्याति फैल गई, जगह–जगह तेजाजी के स्थानक बन गये। सर्प दंश से पीड़ित व्यक्ति इनके स्थानकों पर आकर इलाज कराते हैं तथा भाद्रपद शुक्ला दशमी को तेजाजी की स्मृति में मेला भरता है, जहां हजारों लोग मेले में आकर लोक देवता तेजाजी की पूजा करते हैं।

2. गोगाजी –

गोगादे चौहान ददेरवा (चुरू) के निवासी थे। इनके पिता का नाम जेंहवर तथा माता का नाम बाइल था। बाइल गोरखनाथ की भक्त थी। बाइल की सेवा से प्रसन्न होकर गोरखनाथ ने गूगल धूप से बना सर्प दिया और कहा कि इसे दूध में घोल कर पी जाना, परिणामस्वरूप गोगादे का जन्म हुआ। इनका विवाह पाबूजी के बड़े भाई बूढ़ौजी की पुत्री केमलदे से करना चाहते थे लेकिन बूढ़ो जी यह नहीं चाहते थे। एक दिन गोगाजी सर्प का रूप धारण कर फूलों के बीच बैठ गये। केमलदे फूल लेने लगी, तब सांप से उसे डस दिया। अन्त में गोगाजी के अभिमंत्रित धागे को केमलदे के बाँधने से वह ठीक हो गई और दोनों का विवाह हो गया।

गोगाजी ने दिल्ली के सुल्तान फिरोजशाह से युद्ध किया। इस युद्ध में गोगाजी के दो मौसेरे भाई अरजन व सरजन भी बादशाह की ओर से लड़ रहे थे। वे दोनों मारे गये। अपने घर पर यह बात गोगा ने अपनी माता को बताई, वह बहुत नाराज हुई और गोगा को घर से चले जाने और मुँह नहीं दिखाने को कहा। गोगा को यह बहुत बुरा लगा और जीवित समाधि ले ली। भाद्रपद के कृष्ण पक्ष की नवमी को गोगा नवमी के रूप में मनायी जाती है तथा वीर पुरूष के रुप में इनकी पूजा होती है। नौ गाँठ वाली 'गोगा राखी' हल चलाते समय हल व हाली दोनों के बाँधी जाती है। ददेरवा, राजगढ़,

चूरु, रतनगढ़ आदि क्षेत्रों में गोगाजी के मेले लगते हैं। गोगाजी के थान को गोगामेड़ी कहा जाता है। जो इन्द्रमानगढ़ किले में स्थित है। गोगाजी के भक्त हाथों में ऊंचे निशान (झण्डे) लिए हुये ढोल नगाड़े,झांझर आदि बजाते हुए नृत्य करते हैं। रात्रि जागरण भी किया जाता है। गोगामेड़ी के मैले में राजस्थान से बाहर के लोग भी आते हैं।

3. पाबूजी –

पाबूजी राठौड़ कोल्हूगढ़ के रहने वाले थे। चांदा और डामा नामक दो वीर इनके प्रिय सहयोगी थे। जब पाबूजी युवा हुए तो अमरकोट के सोढ़ा राणा के यहां से सगाई का नारियल आया। सगाई तय हो गई। पाबू ने देवल नामक एक चारण देवी को बहन बना रखा था। देवल के पास एक बहुत सुन्दर और सर्वगुण सम्पन्न घोड़ी थी, जिसका नाम 'केसर काळवी' था। देवल अपनी गायों की रखवाली इस घोड़ी से करती थी। इस घोड़ी पर जायल के जिंदराव खींची की आँख थी, वह इसे प्राप्त करना चाहता था। जिंदराव और पाबू में किसी बात को लेकर मनमुटाव भी था।

विवाह के अवसर पर पाबूजी ने देवलदेवी से यह घोड़ी मांगी। देवल ने जिंदराव की बात बताई, तब पाबू ने कहा कि आवश्यकता पड़ी तो अपना कार्य बीच में छोड़कर आ जाऊंगा। देवल ने घोड़ी दे दी। बारात अमरकोट पहुँची। जिंदराव ने मौका देखा और देवल देवी की गायों को लेकर भागा। पाबूजी जब शादी के फेरे ले रहे थे, तब देवल के समाचार पाबू को मिले कि जिंदराव उसकी गायें लेकर भाग गया है। समाचार मिलते ही अपने वचन के अनुसार शादी के फेरे को बीच में ही छोड़कर केसर काळवी घोड़ी पर बैठकर जिंदराव का पीछा किया। गायों को तो छुड़ा दिया लेकिन पाबूजी खेत पर रहे। अर्द्धविवाहित सोढ़ी पाबूजी के साथ सती हो गई। इनकी यह यशगाथा पाबूजी की फड़ में संकलित है, जिसका वाचन बड़ा लोकप्रिय है। पाबूजी की लोकदेवता के रूप में पूजा की जाती है।

रामदेवजी

लोक देवताओं में रामदेव जी भी अत्यधिक लोकप्रिय हैं। इनका जन्म 15वीं शताब्दी के अजमल जी और मैणा देवी के घर पोकरण के एक गांव में हुआ था। इनका विवाह नेतल देवी के साथ हुआ था। बाबा रामदेवजी सिद्ध सन्त, शूरवीर, चमत्कारी, कर्त्तव्यपरायण, जनता के रक्षक और गौ रक्षक के रूप में प्रसिद्ध हुए। उन्होंने जाति व्यवस्था का विरोध करते हुए सामाजिक समरसता का संदेश दिया।

रामदेवजी ने जीव मात्र के प्रति दया,गुरु महिमा,पुरुषार्थ एवं मानव के गौरव को महत्व दिया। वे समाज सुधारक भी थे। समाज में अछूत कहे जाने वाले वर्ग के साथ बैठकर भजन करना, दलित डालीबाई का बहिन के रूप में पोषण करना, धार्मिक आडम्बरों का विरोध करना तथा हिन्दू मुस्लिम एकता पर बल देना आदि। रामदेवजी के प्रमुख कार्य थे। रामदेव जी ने गुरू की महत्ता पर जोर देते हुये कर्मों की शुद्धता पर बल दिया। ग्रामीण समाज में बाबा रामदेव गौ रक्षक, परोपकारी और लोकदेव के रूप में पूज्य है। राजस्थान के अलावा मध्यप्रदेश व गुजरात में भी इनकी पूजा की जाती है। ये सामाजिक सौहार्द्र के प्रतीक थे।

रामदेवजी

अश्वारुढ़ बाबा रामदेव के एक हाथ में माला और दूसरे हाथ में तंदूरा शक्ति व भक्ति के प्रतीक है। इनके समाधि स्थल पर निर्मित मन्दिर, राम सरोवर, पर्ण बावड़ी, डालीबाई का समाधि स्थल मन्दिर, पावन आदि स्मारक माने जाते है। विभिन्न गांवों में रामदेवजी के थान व मंदिर है। खेजड़ी वृक्ष के नीचे चबूतरे पर रामदेवजी के पगलियें (चरण) स्थापित किये जाते हैं। मन्दिरों को देवल या देवरा के नाम से जाना जाता है। बाबा रामेदव के नाम की शपथ भी ली जाती है जिसे 'रामदेव बाबा री आण' कहा जाता है। रात्रि में जम्मा जागरण किया जाता है

तथा लोक गीत,काव्य कथा से इनकी स्तुति की जाती है। इन्होंने विक्रम सम्वत् 1515 (1458 ई.) में समाधि ली थी। इनके समाधि स्थल रामदेवरा (रुणेचा) में प्रतिवर्ष भाद्रपद शुक्ल द्वितीय से दशमी तक विशाल मेला लगता है। आस–पास के प्रदेशों से भी लोग मेले में आते हैं।

5.देवनारायण–

देवनारायण की गिनती प्रमुख लोकप्रिय लोकदेवताओं में होती है। देवनारायण बगड़ावत वंश के थे। वे नाग वंशीय गुर्जर थे जिनका मूल स्थान वर्तमान में अजमेर के निकट नाग पहाड़ था। गुर्जर जाति एक संगठित, सुसंस्कृत वीर जातियों में गिनी जाती है जिसका आदिकाल से गौरवशाली इतिहास रहा है। समाज में प्रचलित लोक कथाओं के माध्यम से गुर्जर जाति के शौर्य–पुरूष देवनारायण के सम्बन्ध में विस्तृत रूप से जानकारी मिलती है। देवनारायण महागाथा में इनको चौहान वंश से सम्बन्धित बताया है।

देवनारायण

देवनारायण की फड़ के अनुसार माण्डलजी के हीराराम, हीराराम के बाघसिंह और बाघसिंह के 24 पुत्र हुए जो बगड़ावत कहलाये। इन्हीं में से बड़े भाई सवाई भोज और माता साडू (सेढू) के पुत्र के रूप में वि.सं. 968 (911 ई.) में माघ शुक्ला सप्तमी को आलौकिक पुरूष देवनारायण का जन्म मालासेरी में हुआ।

देवनारायण पराक्रमी योद्धा थे जिन्होंने अत्याचारी शासकों के विरूद्ध कई संघर्ष एवं युद्ध किये। वे शासक भी रहे। उन्होंने अनेक सिद्धियाँ प्राप्त की। चमत्कारों के आधार पर धीरे–धीरे वे गुर्जरों के देव स्वरूप बनते गये एवं अपने इष्टदेव के रूप में पूजे जाने लगे। देवनारायण को विष्णु के अवतार के रूप में गुर्जर समाज द्वारा राजस्थान व दक्षिण–पश्चिमी मध्य प्रदेश में अपने लोकदेवता के रूप में पूजा की जाती है। उन्होंने लोगों के दुःख व कष्टों का निवारण किया। देवनारायण महागाथा में बगड़ावतों और राण भिणाय के शासक के बीच युद्ध का रोचक वर्णन है।

देवनारायणजी का अन्तिम समय ब्यावर तहसील के मसूदा से 6 कि.मी. दूरी पर स्थित देहमाली (देमाली) स्थान पर गुजरा। भाद्रपद शुक्ला सप्तमी को उनका वहीं देहावसान हुआ। देवनारायण से पीपलदे द्वारा सन्तान विहीन छोड़कर न जाने के आग्रह पर बैकुण्ठ जाने पूर्व पीपलदे से एक पुत्र बीला व पुत्री बीली उत्पन्न हुई। उनका पुत्र ही उनका प्रथम पुजारी हुआ।

कृष्ण की तरह देवनारायण भी गायों के रक्षक थे। उन्होंने बगड़ावतों की पांच गायें खोजी, जिनमें सामान्य गायों से अलग विशिष्ट लक्षण थे। देवनारायण प्रातःकाल उठते ही सरेमाता गाय के दर्शन करते थे। यह गाय बगड़ावतों के गुरू रूपनाथ ने सवाई भोज को दी थी। देवनारायण के पास 98000 पशु धन था। जब देवनारायण की गायें राण भिणाय का राणा घेर कर ले जाता तो देवनारायण गायों की रक्षार्थ राणा से युद्ध करते हैं और गायों को छुड़ाकर लाते थे। देवनारायण की सेना में ग्वाले अधिक थे। 1444 ग्वालों का होना बताया गया है, जिनका काम गायों को चराना और गायों की रक्षा करना था। देवनारायण ने अपने अनुयायियों को गायों की रक्षा का संदेश दिया।

इन्होंने जीवन में बुराइयों से लड़कर अच्छाइयों को जन्म दिया। आतंकवाद से संघर्ष कर सच्चाई की रक्षा की एवं शान्ति स्थापित की। हर असहाय की सहायता की। राजस्थान में जगह–जगह इनके अनुयायियों ने देवालय अलग–अलग स्थानों पर बनवाये हैं जिनको देवरा भी कहा जाता है। ये देवरे अजमेर, चित्तौड़, भीलवाड़ा, व टोंक में काफी संख्या में है। देवनारायण का प्रमुख मन्दिर भीलवाड़ा जिले में आसीन्द कस्बे के निकट खारी नदी के तट पर सवाई भोज में है। देवनारायण

का एक प्रमुख देवालय निवाई तहसील के जोधपुरिया गाँव में वनस्थली से 9 कि.मी. दूरी पर है। सम्पूर्ण भारत में गुर्जर समाज का यह सर्वाधिक पौराणिक तीर्थ स्थल है।

देवनारायण की पूजा भोपाओं द्वारा की जाती है। ये भोपा विभिन्न स्थानों पर जाकर गुर्जर समुदाय के मध्य फड़ (लपेटे हुये कपड़े पर देवनारायण जी की चित्रित कथा) के माध्यम से देवनारायण की गाथा गा कर सुनाते हैं।

देवनारायण की फड़ में 335 गीत हैं। जिनका लगभग 1200 पृष्ठों में संग्रह किया गया है एवं लगभग 15000 पंक्तियाँ हैं। ये गीत परम्परागत भोपाओं को कण्ठस्थ याद रहते हैं। देवनारायण की फड़ राजस्थान की फड़ों में सर्वाधिक लोकप्रिय एवं सबसे बड़ी है।

समाज सुधारक

1. सन्त पीपा जी

कालीसिन्ध नदी पर बना प्राचीन गागरोन दुर्ग पीपाजी का जन्म स्थली रहा है। उनका जन्म वि.सं.1417 चैत्र शुक्ल पूर्णिमा खींची राजवंश परिवार में हुआ था। वे गागरोन राज्य के वीर साहसी व प्रजापालक शासक थे। शासक रहते हुए उन्होंने दिल्ली सल्तनत के सुल्तान फिरोज तुगलक से संघर्ष करके विजय प्राप्त की लेकिन युद्ध जनित उन्माद,हत्या, जमीन से जल तक रक्तपात को देखा तो उन्होनें संन्यासी होने का निर्णय ले

सन्त पीपाजी

लिया। पीपाजी के पिता पूजा–पाठ व भक्ति भावना में अधिक विश्वास रखते थे। पीपाजी की प्रजा भी नित्य अराधना करती थी। देवी कृपा से राज्य में कभी भी अकाल व महामारी का प्रकोप नहीं हुआ। किसी शत्रु ने आक्रमण भी किया तो परास्त हुआ। राजगद्दी त्याग करने के बाद वे रामानन्द के शिष्य बन गये। रामानन्द के 12 प्रमुख शिष्यों में पीपा जी भी एक हैं।

वे देश के महान् समाज सुधारकों की श्रेणी में आते हैं। उनका जीवन व चरित्र महान था। संत पीपाजी ने राजस्थान में भक्ति एव समाज सुधार का अलख जगाया।

पीपाजी ने अपने विचारों और कृतित्व से समाज सुधार का मार्ग प्रशस्त किया। पीपाजी निर्गुण विचारधारा के संत कवि एवं समाज सुधारक थे। पीपाजी ने भारत में चली आ रही चतुर वर्ण व्यवस्था में नवीन वर्ग,श्रमिक वर्ग सृजित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनके द्वारा सृजित यह नवीन वर्ग ऐसा था जो हाथों से परिश्रम करता और मुख से ब्रहम का उच्चारण करता था।

समाज सुधार की दृष्टि से सन्त पीपाजी ने बाह्य आडम्बरों, कर्मकाण्डों एवं रुढ़ियों की कटु आलोचना की तथा बताया कि ईश्वर निर्गुण व निराकार है, वह सर्वत्र व्याप्त है, जीवात्मा के रूप में वह प्रत्येक जीव में व्याप्त है। मानव मन में ही सारी सिद्धियाँ व वस्तुएं व्याप्त हैं। ईश्वर या परम् ब्रहम की पहचान मन में अनुभूति से है।

पीपाजी सच्चे अर्थों में लोक मंगल की समन्वयकारी पद्धति के पोषक थे। उन्होंने संसार त्याग कर भक्ति करते हुए भी कभी भी पलायन करने का संदेश नहीं दिया। उन्होंने ऐसे सन्तों को भी खुली आलोचना की जो केवल वेशभूषा से सन्त थे,आचरण से नहीं। ऊँच–नीच की भावना, पर्दाप्रथा का कठोर विरोध उतरी भारत में पहली बार किया। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण उन्होंनें स्वयं से दिया। अपनी पत्नी सीता सहचरी को आजीवन बिना पर्दे ही रखा, जबकि राजपूतों में पर्दा प्रथा का विशेष प्रचलन था। गुरू भक्ति की भावना पीपाजी में कूट–कूट कर भरी हुई थी। उनको जानकारी थी कि गुरु के बिना माया से मुक्ति संभव नही है।

2. जाम्भोजी –

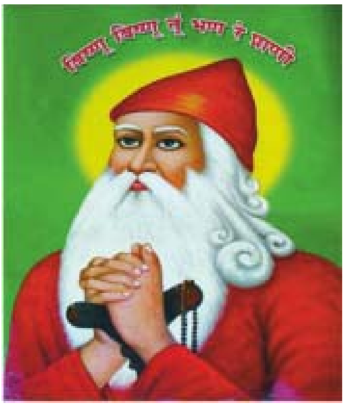

जाम्भोजी

जाम्भोजी विश्नोई सम्प्रदाय के संस्थापक थे। इनका जन्म वि.सं.1508 (1451 ई.) में भाद्रपद शुक्ल अष्टमी को नागौर जिले के पीपासर गांव में पंवार लोहटजी और हांसा देवी के यहां पर हुआ था। लगभग 20 वर्ष तक पशु चराने का कार्य किया और उसके बाद सन्यास ग्रहण किया और वि.सं.1593 में देह त्याग किया।

वि.सं.1542 में इन्होंने कार्तिक कृष्णा अष्टमी पर सम्भराथल नामक स्थान पर प्रथम पीठ स्थापित करके विश्नोई समाज का प्रवर्तन किया। शासक वर्ग व विशिष्ट वर्ग दोनों इनसे प्रभावित थे। जाम्भोजी के सिद्धान्त लोगों के दैनिक जीवन से जुड़े हुए है। जाम्भोजी ने अपने अनुयाइयों को 29 नियमों के पालन करने पर जोर दिया। विश्नोई नाम भी (बीस– नौ) अंकों में (20–9) के आधार पर ही दिया।

जाम्भोजी शांतिप्रिय, सहृदयी, साग्राही, समन्वयकारी, उदार चिन्तक, मानव धर्म के पोषक,पर्यावरण के संरक्षक व हिन्दू मुसलमानों में एकता व सामंजस्य के समर्थक थे। अकाल के समय जाम्भोजी ने सामान्य जन की सहायता की थी। उन्होंने बताया कि ईश्वर प्राप्ति के लिए संन्यास की आवश्यकता नहीं है। समराथल के पास मुकाम नामक स्थान पर वर्ष में दो बार जाम्भोजी का मेला लगता है। जाम्भोजी ने चारीत्रिक पवित्रता और मूलभूत मानवीय गुणों पर बल दिया। इनके वचनों का सामूहिक नाम सबदवाणी है। जाम्भोजी की शिक्षाओं के कारण ही विश्नोई समाज निरन्तर पर्यावरण की रक्षा, पेड़ो की रक्षा एवं जीव हत्या के विरोध में प्रयासरत हैं।

3. जसनाथ –

राजस्थान के समाज सुधारकों में जसनाथ का नाम अत्यधिक महत्वपूर्ण है। वि.सं. 1539 में कतरियासर (बीकानेर) में जसनाथ जी का जन्म हुआ। 12 वर्ष की आयु में ही इन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया एवं गोरख मालिया में कठोर तप किया। वि.सं. 1563 में इन्होंने समाधि ली। भक्तिकालीन अन्य संतों की भाँति जसनाथ ने भी समाज में प्रचलित रुढ़ियों और पाखण्ड़ों का विरोध किया। इन्होंनें निर्गुण और निराकार भक्ति पर बल दिया। जातिवाद का खण्डन किया। संयम एवं सदाचार पर विशेष बल दिया। उन्होंने भी ईश्वर की प्राप्ति के लिए गुरु का होना आवश्यक बताया।

जसनाथ ने जसनाथी सम्प्रदाय की शुरुआत की। जसनाथ ने अपने सम्प्रदाय के 36 नियमों का प्रतिपादन किया। रात्रि जागरण के समय अग्निनृत्य जसनाथी सम्प्रदाय की प्रमुख विशेषता है। उन्होंने प्रेम भक्ति एवं समन्वय की भावना से समाज को आगे बढ़ाने का संदेश दिया।

4. दादूदयाल –

दादूदयाल मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन के प्रमुख सन्त थे। इनका जन्म वि.सं.1601 में फाल्गुन शुक्ला अष्टमी को अहमदाबाद में हुआ था। पूर्व में इनका नाम महाबलि था। पत्नी की मृत्यु के बाद ये संन्यासी बन गये। अधिकांशतया ये सांभर व आमेर में रहने लगे। फतहपुर सीकरी में अकबर से भेंट के बाद आप भक्ति का प्रचार–प्रसार करने लगे। राजस्थान में ये नारायणा में रहने लगे। 1603 ई.में वहीं पर इन्होंने अपनी देह का त्याग किया। इनके 52 शिष्य थे। इनमे से रज्जब सुन्दरदास, जनगोपाल प्रमुख थे। जिन्होंने अपने गुरु की शिक्षाएँ जन–जन तक फैलाई। इनकी शिक्षाएँ 'दादूवाणी' में संग्रहीत है।

दादूदयाल ने बहुत ही सरल भाषा में अपने विचारों की अभिव्यक्ति की है। उनके अनुसार ब्रह्म से ओंकार की उत्पति और ओंकार से पाँच तत्वों की उत्पति हुई है। माया के कारण ही आत्मा और परमात्मा के मध्य भेद होता है। उन्होंने ईश्वर प्राप्ति के लिए गुरु को अत्यन्त आवश्यक बताया। अच्छी संगति, ईश्वर का स्मरण, अहंकार का त्याग,संयम एवं निर्भीक उपासना ही सच्चे साधन हैं। दादू ने विभिन्न प्रकार के सामाजिक आडम्बर, पाखण्ड एवं सामाजिक भेदभाव का खण्डन किया है। जीवन में सादगी, सफलता और निश्छलता पर विशेष बल दिया है। सरल भाषा एवं विचारों के आधार पर दादू को राजस्थान का कबीर भी कहा जाता है।

5. रामचरण जी :–

रामचरण महाराज रामस्नेही सम्प्रदाय के संस्थापक थे। आप स्वामी रामचरणजी महाराज के नाम से प्रसिद्ध है। इनका मूल नाम रामकिशन विजयवर्गीय था। इनका जन्म माघ शुक्ल 14, वि.सं. 1776 (24 फरवरी,1720 ई.) में टोंक जिले में सोडा गांव में हुआ था। निर्वाण वैशाख कृष्णा 5 वि.सं.1855 (1799 ई.) में शाहपुरा (भीलवाड़ा) में हुआ। ये रामद्वारा शाहपुरा के संस्थापक आचार्य थे। इनके बचपन का नाम रामकिशन था एवं पिताजी का नाम बख्तराम विजयवर्गीय एवं माता का नाम देवहुती देवी था। इनका विवाह गुलाव कंवर के साथ हुआ। शादी के बाद आमेर के जयसिंह द्वितीय ने जयपुर मालपुरा के दीवान पद पर नियुक्त किया। पिताजी की मृत्यु के बाद

भौतिकवाद के प्रति रामचरण जी की रुचि कम होने लगी। कुछ समय बाद ही उन्होंने सन्यास ग्रहण कर लिया और शाहपुरा (भीलवाड़ा) के निकट दांतडा गाँव में गुरु कृपाराम जी के सम्पर्क में आये और उनके शिष्य बन गये। भीलवाड़ा में मियांचन्द जी की पहाड़ी पर उन्होंने तपस्या की। रामचरण जी ने निर्गुण भक्ति पर जोर दिया लेकिन सगुण का भी उन्होंने विरोध नहीं किया। लोगों को राम–राम शब्द बोलने के लिए प्रेरित किया। स्वामी जी ने विशिष्ट अद्वैतवाद भक्ति परम्परा का अनुसरण किया। श्रीराम की स्तुति का प्रचार किया। राम की स्तुति के फलस्वरूप इनके द्वारा स्थापित सम्प्रदाय रामस्नेही के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

समाज में प्रचलित दिखावे एवं आडम्बरों का रामचरणजी ने विरोध किया। उन्होंने मूर्ति पूजा की अन्धभक्ति का समर्थन नहीं किया। उन्होंने व्यक्ति की समानता का समर्थन किया एवं जातिगत भेदभाव का विरोध किया। रामचरण जी महाराज ने बताया कि व्यक्ति को ईश्वर की खोज में अलग–अलग स्थानों पर जाने के बजाय अपने आप को तलाशना चाहिए। स्वामीजी की रचनाओं का संकलन 'वाणी जी' ने नाम से संगृहीत है। इसका प्रकाशन शाहपुरा (भीलवाड़ा) से स्वामी रामचरण जी महाराज की 'अभिनव वाणी' के नाम से प्रकाशित है।

रामचरण जी महाराज

वि.सं. 1817 में रामचरणजी के शिष्य रामजन जी ने रामचरण जी महाराज के सिद्धान्तों के प्रसार की दृष्टि से विशेष प्रयास किया। पूजा स्थलों के रूप में विभिन्न स्थानों पर रामद्वारों का निर्माण किया गया। शाहपुरा के प्रसिद्ध रामद्वारा का निर्माण शाहपुरा के शासक महाराजा अमरसिंह व उनके भाई छत्रासिंह के सहयोग से किया गया। अन्य स्थानों में भीलवाड़ा व सोडा में भी रामद्वारे हैं। रामद्वारों को 'रामनिवास धाम' या 'रामनिवास बैकुण्ठधाम' भी कहते हैं।' राजस्थान में शाहपुरा रामस्नेही सम्प्रदाय का प्रमुख केन्द्र है। इस सम्प्रदाय का यहां पर अन्तर्राष्ट्रीय कार्यालय है। रामचरणजी महाराज ने कहा कि बिना किसी भेदभाव के कोई भी व्यक्ति रामद्वारा आकर ईश्वर की पूजा कर सकता है। रामस्नेही शब्द का तात्पर्य ही –' ईश्वर (राम) से स्नेह करना है।

18वीं शताब्दी एक प्रकार से राजस्थान के राजनैतिक,सामाजिक एवं धार्मिक जीवन के पतन का युग था। ऐसे वातावरण को शुद्ध करने का कार्य रामस्नेही सम्प्रदाय ने किया। इस सम्प्रदाय के सन्तों ने रामभक्ति की निर्गुण शाखा का व्यापक प्रचार किया। सभी सन्तों ने जाति व्यवस्था का खण्डन किया। गुरु का होना अनिवार्य बताया, धर्म के बाह्य आडम्बरों का खण्डन किया। समाज में प्रचलित सामाजिक बुराइयों का जबरदस्त विरोध किया। समन्वय की भावना अधिक होने के कारण राजस्थान एवं आसपास के राज्यों में यह सम्प्रदाय काफी लोकप्रिय हुए।

6. आचार्य भिक्षु

जैन परम्परा में आचार्य भिक्षु का उदय एक नये आलोक की दृष्टि से है। इस महान् सन्त का जन्म मारवाड़ के कंटालिया ग्राम में आषाढ़ शुक्ला त्रयोदशी वि.सं. 1783 (1726 ई. 2 जुलाई) में हुआ था। लगभग 25 वर्ष की आयु में मगसिर कृष्णा–12 वि.सं.1808 में वे जैन आचार्य रघुनाथ जी के सम्प्रदाय में मुनि हुए। लगभग आठ वर्ष तक वे अपने गुरू के सानिध्य में रहे। उस समय आचार की शिथिलता का बोलबाला था। अनेक जैन साधु पथ–भ्रष्ट हो रहे थे। मर्यादा से अधिक वस्त्र रखते थे, अधिक सरस आहार लेते थे तथा शिष्य बनाने के लिए आतुर रहते। उस समय राजनगर के अनुयायी श्रावकों में रघुनाथजी के आचार–विचार सम्बंधी मान्यताओं को लेकर काफी अन्तर्द्वन्द्व था। रघुनाथ जी ने अपने प्रमुख शिष्य भीखणजी (भिक्षु) के नेतृत्व में साधुओं का एक दल 1758 ई. (वि.सं. 1815) में राजनगर के अनुयाइयों को समझाने व अपने आचार्य के प्रति पुनः श्रद्धा व्यक्त कराने भेजा। राजनगर आकर शुरू में तो भीखणजी ने उन्हें खूब समझाया किन्तु शास्त्र मर्मज्ञ चतरोजी पोरवाल एवं बच्छराज ओसवाल के साथ हुई चर्चाओं के बाद भीखणजी स्वयं मानसिक संघर्ष में लीन हो गये। 1758 ई. का चातुर्मास उनके इसी संघर्ष का काल रहा। उन्होंने आगमों (जैन शास्त्रों) का गहराई से मंथन किया। शास्त्र सम्मत मार्ग से भटकने की भूल उन्हें अनुभव हुई। चातुर्मास समाप्त होने पर वे अपने गुरू रघुनाथ जी के पास आए। उन्हें वस्तु–स्थिति से परिचित कराया किन्तु आचार्य रघुनाथजी ने उसे स्वीकार नहीं किया। अंततः विवश होकर भीखणजी ने अपने गुरू से संबंध तोड़ लिये। 1760 ई. में जोधपुर के बाजार

में एक खाली दुकान में भिक्षु के मत को मानने वाले तेरह श्रावक धार्मिक क्रिया कर रहे थे। उस समय भिक्षु के साथ भी 13 साधु ही थे। उस दौरान उधर से जोधपुर के दीवान फतहमल सिंघी गुजर रहे थे, उनसे हुई चर्चा में 13 श्रावक व 13 साधु के योग को देखकर उन्हें' तेरापंथी' कहकर पुकारा गया। इस पर विरोधी लोगों ने भीखण जी के अनुयाइयों को 'तेरापंथी' कहकर चिढ़ाना आरंम्भ किया किन्तु भीखणजी ने इस नामकरण को तत्काल स्वीकार कर लिया और कहा 'हे प्रभो! यह तेरापंथ है इसमें मेरा कुछ भी नहीं है। हम सब निर्भ्रान्त होकर इस पंथ पर चलने वाले हैं, अतः हम तेरापंथी ही हैं।'' आपने इसका संख्यापरक अर्थ करते हुए भी कहा कि पांच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्ति– इन तेरह नियमों की पूर्ण रूप से श्रद्धा तथा पालना करने वाले व्यक्ति ही 'तेरापंथी' हैं। इस प्रकार शिथिलाचार एवं रूढ़ियों के विरूद्ध भीखणजी द्वारा किया धर्म घोष 'तेरापंथ' धर्म सम्प्रदाय के रूप में विख्यात हुआ।

आचार्य रघुनाथ जी से अलग होने के बाद भीखणजी का प्रथम चातुर्मास केलवा में हुआ। यहां पर उनके विरोधियों की संख्या बहुत अधिक थी परन्तु भीखणजी इससे भयभीत नहीं हुए अपितु विरोध को विनोदस्वरूप समझ कर अपनी आत्मा का तपाना ही उनका ध्येय था। स्वामी जी के कठोर संयम, अडिग धैर्य के समक्ष विरोधी नतमस्तक हो गये। स्वामीजी ने आषाढ़ी पूर्णिमा को तेरापंथ धर्म संघ की स्थापना भी केलवा में ही की। संघ के ये प्रारंभिक दिन बड़े कठोर परीक्षण के थे। कदम–कदम पर विरोध, प्रताड़ना व विपत्तियों का सामना करना पड़ रहा था परंतु आचार्य भिक्षु (भीखणजी) ने तो आत्म कल्याण के लिए घर छोड़ा था।

अतः उन्होंने विरोध का उत्तर कठिन साधना व जिन भाषित धर्म पर चलकर दिया था जिसका लोगों पर बड़ा प्रभाव पड़ा आचार्य भिक्षु ने जैन धर्म की सैद्धांतिक बातों को जनसाधारण तक पहुँचाने के लिए महावीर स्वामी की भांति जन–भाषा का प्रयोग कर उन्हें

तेरापंथ के आद्यप्रवर्तक आचार्य श्री भिक्षु

सामान्य व्यक्ति तक पहुँचाने का भरसक प्रयास किया। राजस्थानी भाषा में भिक्षु ने गद्य एवं पद्य में विपुल साहित्य लिखा।

भीखणजी (भिक्षु) ने तेरापंथ के आचार्य के रूप में केलवा, राजनगर, पाली, पीपाड़, नाथद्वारा, आमेट, सिरियारी, कंटालिया, खेरवा, बगड़ी, बरलू, सवाईमाधोपुर, पादू, पुर, सोजत, बनेड़ा आदि कई स्थानों पर चातुर्मास के मध्य अपने उपदेशों से जन मानस को काफी प्रभावित करते हुए अपने मत का प्रचार– प्रसार किया था। आचार्य भिक्षु की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उन्होंने विरोधियों की तनिक भी परवाह न करते हुए उनके विरोध को भी सदैव अपने पक्ष में सकारात्मक रूप में लिया। गुरूवार 2 सितम्बर 1803 ई. (वि.सं. 1860 भाद्रपद शुक्ला 13) को आचार्य भिक्षु का सिरियारी (पाली) मे स्वर्गारोहण हुआ।

आचार्य भिक्षु आचार–विचार की शुद्धता के प्रबल पक्षधर थे। उनकी मान्यता थी कि महावीर के उपदेश सर्वकालिक हैं और उनके अनुसार चलना आज भी कठिन नहीं है। धार्मिक सहिष्णुता व साम्प्रदायिक सद्भाव के वे प्रबल हिमायती थे। इन्होंने अपने धर्मसंघ के साधुओं को एक ही आचार्य की मर्यादा व अनुशासन पर चलने पर बल दिया तथा अन्य साधुओं को अपने शिष्य नहीं बनाने का भी निर्देश दिया। दीक्षा लेकर साधु बनने वाले के लिये भी उसके परिवार की स्वीकृति लेने को अनिवार्य कर दिया। साधुओं के लिये निर्मित भवन मे ठहरने व रहने की उन्होंने मनाही कर दी तथा साधुओं के लिये यह भी जरूरी कर दिया कि वे एक ही घर से नियमित भोजन ग्रहण न करें और साधुओं के लिये बने भोजन को भी स्वीकार नहीं करें। साधुओं को नियमों से ज्यादा वस्त्र, पात्र आदि रखने तथा उन्हें अपने पास रूपये–पैसे रखने पर भी पाबन्दी लगा दी। अपने अनुयाई श्रावकों को भी महावीर के उपदेशों को कड़ाई से अपनाने का निर्देश दिया।

आचार्य भिक्षु ने एक व्यवस्थित,सुस्थापित एवं नियम आधारित तेरापंथ सम्प्रदाय की स्थापना की। उन्होंने एवं स्वअनुशासन पर विशेष बल दिया। उन्होंने एक आचार्य,एक शिष्य एवं एक विचार के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उन्होंने बताया कि धर्म की बात एक साधारण व्यक्ति के समझ में आनी चाहिए ताकि वह उसका पालन करते हुए मोक्ष मार्ग की ओर बढ़ सके। भिक्षु के इस सुधार कार्यक्रम का भविष्य में काफी प्रचार–प्रसार हुआ और लोकप्रियता बढ़ी।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. राजस्थान के महापुरूषों में जननायकों, लोकदेवताओं और समाज सुधारकों ने लोगों को नया रास्ता दिखाया।
2. बापा रावल ने चितौड मे स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने के बाद राज्य की प्रतिष्ठा में वृद्धि की।
3. पृथ्वीराज चौहान ने मोहम्मद गौरी को तराइन के द्वितीय युद्ध से पूर्व कई बार पराजित किया।
4. महाराजा अजीतसिंह को मुगलों के चंगुल से बचाकर वीर दुर्गादास राठौड़ ने स्वामीभक्ति की मिसाल कायम की।
5. महाराणा सांगा ने अपने नेतृत्व में विदेशी आक्रमणों से सुरक्षा की दृष्टि से राजपूत राज्यों को संगठित किया।
6. मालदेव व शेरशाह के मध्य 1544 ई. में सुमेल का प्रसिद्ध युद्ध हुआ।
7. महाराजा सूरजमल के समय जाट राज्य सर्वोच्च शिखर पर था।
8. समाजिक जागृति के लिए गोविन्द गुरू ने सम्प सभा की स्थापना की।
9. मीरां लोकप्रिय भक्त थी। उन्होंने नारी स्वतन्त्रता के भेद के विरूद्ध साहस के साथ आवाज उठायी।
10. डूंगरपुर की भील बालिका कालीबाई ने अंग्रेजों से अपने गुरू की जान बचाने के लिए स्वयं के प्राणों का बलिदान किया।
11. पन्नाधाय स्वामिभक्ति और त्याग की प्रति मूर्ति थी।
12. वृक्ष बचाने के लिये अमृतादेवी ने अपनी तीन पुत्रियों सहित प्राणों का बलिदान किया।
13. धर्म, धरा व धेनु की रक्षार्थ जिन महापुरूषों ने अपने प्राण दे दिये वे लोकदेवता की श्रेणी मे आते हैं।
14 गोगाजी, तेजाजी,पाबूजी तथा रामदेवजी प्रमुख लोक देवता हैं।
15 समाज सुधारकों मे दादू, जसनाथ, जम्भोजी, रामचरणजी, आचार्य भिक्षु जी का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(1) बापा रावल कहाँ के शासक थे?

(अ) चित्तौड़गढ़ (ब) उदयपुर
(स) मारवाड़ (द) अजमेर

(2) तराइन का द्वितीय युद्ध कब हुआ ?

(अ) 1186 (ब) 1191
(स) 1192 (द) 1194

(3) महाराणा सांगा व बाबर के मध्य युद्ध किस स्थान पर लड़ा गया ?

(अ) पानीपत (ब) खातोली
(स) खानवा (द) तराइन

(4) गोविन्द गुरू ने कौनसी संस्था स्थापित की ?

(अ) प्रजामण्डल (ब) सम्प सभा
(स) लोक परिषद (द) भगत पंथ

(5) पाबूजी की घोड़ी का नाम क्या था ?

(अ) केसर काळवी (ब) काली घोड़ी
(स) नीली घोड़ी (द) इनमें से कोई नहीं

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्नः—

1. वीर दुर्गादास ने अपना अन्तिम समय कहाँ व्यतीत किया ?
2. महाराणा सांगा का राज्याभिषेक कब हुआ ?
3. रामदेव के दो प्रमुखों के नाम बताओ ?
4. अमृतादेवी कहां की रहने वाली थी ?
5. लोकदेवता रामदेवजी का जन्म स्थान बताइये ?
6. आचार्य भिक्षु ने कौनसा पंथ चलाया ?
7. मानगढ़ धाम किस जिले में स्थित है ?
8. महाराजा सूरजमल कहाँ के शासक थे ?

लघूत्तरात्मक प्रश्नः—

1. कालीबाई के बलिदान के बारे में आप क्या जानते है ?
2. लोकदेवता पाबूजी का महत्व बताए ?
3. देवनारायण की फड़ क्या है ?
4. मीराबाई के प्रारम्भिक जीवन के बारे मे आप क्या जानते हैं ?
5. पन्नाधाय के बलिदान को समझाइये।
6. गोगाजी की पूजा क्यों की जाती है ?
7. जसनाथजी के सामाजिक सुधार को बताइये ?
8. बिश्नोई का शाब्दिक अर्थ क्या है ?

निबन्धात्मक प्रश्नः—

1. सन्त दादू का समाज सुधारक के रूप मे योगदान बताइये।
2. पृथ्वीराज चौहान की उपलब्धियाँ बताइए।
3. बाबर व राणा सांगा के मध्य संघर्ष के कारण व परिणाम बताइये।
4. राजस्थान के प्रमुख लोकदेवताओं पर निबन्ध लिखिये ?

वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर

1. (अ) 2. (स) 3. (स) 4. (ब) 5. (अ)